क्या हम इन्सान ही अक्लमंद हैं?

डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन

हमें स्कूल-कॉलेज में पढ़ाया गया था कि सारे जानवरों में सिर्फ इन्सान ही सोचते समझते हैं। यानी हम ही *सेपिएन्ट* हैं। अब धीरे-धीरे समझ में आ रहा है कि यह दावा कितना मानव-केंद्रित था। जो नाम हमने अपने-आपको दिया है, *होमो सेपिएन्स*, वह एक अहंकार का द्योतक है क्योंकि *सेपिएन्स* (यानी अक्लमंद) का विलोम बेवकूफ होता है।

यह भंडाफोड़ तब हुआ जब चिंपैंज़ी का अध्ययन किया गया। चिंपैंज़ी हमारे ही कुल के हैं मगर हम उनसे चंद लाख साल पहले अलग दिशा में बढ़ गए थे। सवाल यह था कि क्या वे हमारी तरह संज्ञानशील हैं और सोचते हैं। हाल ही में क्योटो विश्वविद्यालय के डॉ. तेतसुरो मात्सुज़ावा ने दर्शाया है कि 5 साल के चिंपैंज़ियों ने याददाश्त के एक अभ्यास में कॉलेज विद्यार्थियों को पछाड़ दिया। उनका शोध पत्र करंट बायोलॉजी के एक ताज़ा अंक में प्रकाशित हुआ है। इसमें 5 साल के तीन चिंपैंज़ियों के प्रदर्शन का ब्यौरा दिया गया है।

इन चिंपैंज़ियों को अरबी अंक 1 से 9 का क्रम सिखाया गया था। अंकों का क्रम सिखाने के बाद उन्हें एक परीक्षण दिया गया जिसमें उन्हें ये अंक एक कंप्यूटर के पर्दे पर दिखाए जाते हैं। जब वे पहले अंक को छूते तो शेष 8 अंक सफेद वर्गाकार डिब्बों में बदल जाते थे। परीक्षण यह था कि चिपैंज़ी इन आठों को उन अंकों के क्रम में छुएं जो डिब्बों में बदलने से पहले वहां थे।

इन चिपैंज़ियों और कॉलेज के आठ छात्रों की प्रतियोगिता में चिपैंज़ी लगातार हर बार जीते। और चिपैंज़ियों में भी अयुमु नाम का चिंपैंज़ी तो आइंस्टाइन साबित हुआ। वैज्ञानिकों का कहना है कि यह परीक्षण इस धारणा को चुनौती देता है कि इन्सान हर तरह के संज्ञान कार्य में चिंपैंज़ी से बेहतर होते हैं।

संज्ञान थोड़ा भारी-भरकम शब्द है। इसका आशय जानने या प्रतीती के कार्य या प्रक्रिया से होता है। इसका सम्बंध विचार निर्माण या अमूर्तीकरण से भी होता है। अयुमु की हरकतें इस परिभाषा में पूरी तरह फिट होती हैं। और 42 वर्षीय चिंपैंज़ी वाशो की हरकतें भी इस परिभाषा में फिट होती हैं, जिसकी मृत्यु कुछ ही दिनों पहले वॉशिंग्टन विश्वविद्यालय के परिसर में हुई।

वाशो इतनी मशहूर हो गई थी कि उसका शोक संदेश एक पेशेवर शोध पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। वाशो को वैज्ञानिक दंपति एलन व बीट्रिस गार्डनर ने दो वर्ष की उम्र से पाला था। गार्डनर दंपति इस बात का अध्ययन करने में जुटे थे कि क्या चिंपैंज़ी कोई भाषा सीखकर हमारे साथ संवाद कर सकते हैं। चूंकि चिपैंज़ियों के पास बोलने के लिए ज़रूरी स्वर यंत्र नहीं होता, इसलिए वैज्ञानिकों ने फैसला किया कि वे वाशो को अमेरिकन साइन लेंग्वेज (इशारों की भाषा) यानी ए.एस.एल. सिखाएंगे।

चिपैंज़ियों और कॉलेज के आठ छात्रों की प्रतियोगिता में चिपैंज़ी लगातार हर बार जीते।

खुद उसके एक शारीरिक हावभाव और हाथों के इशारे (भुजाओं को पास-पास लाना) से शुरू करके वैज्ञानिकों ने इस संकेत को इस तरह ढाला कि इसका अर्थ हुआ 'अधिक'। जल्दी ही गार्डनर दंपति ने पाया कि वाशो अपने आसपास के इन्सानों को ए.एस.एल. के इशारे इस्तेमाल करते देखकर स्वयं वे इशारे सीख सकती है। यह रिपोर्ट किया गया है कि धीरे-धीरे वाशो करीब 250 शब्द और मुहावरे काफी विश्वसनीय ढंग से इस्तेमाल कर सकती थी।

चिंपैंज़ी वाशो न सिर्फ स्वयं संकेत भाषा सीख गई, उसने एक चिंपैंज़ी बच्चे लूलिस को अपने पुत्र के रूप में अपना लिया और उसे भी अपना कुछ ज्ञान सिखाया।

और तो और, वाशो ने एक चिंपैंज़ी बच्चे लूलिस को अपने पुत्र के रूप में अपना लिया और उसे भी अपना कुछ ज्ञान सिखाया। ज़ाहिर है, लूलिस को ए.एस.एल. सिखाने के लिए चिंपैंज़ी भाषा का उपयोग हुआ होगा।

जैसी कि उम्मीद थी प्रोजेक्ट वाशो ने विज्ञान जगत में हलचल पैदा कर दी है। यह हलचल अभी थमी नहीं है। चालीस साल पहले भाषा वैज्ञानिक नोम चोम्स्की ने सुझाया था कि दुनिया की सारी भाषाएं एक सार्वभौमिक व्याकरण से संचालित होती हैं। उनका दावा था कि हर शिशु इस व्याकरण के ज्ञान के साथ जन्म लेता है। दूसरे शब्दों में, भाषा की समझ एक जैविक विरासत है और संभव है कि भाषा का एक जिनेटिक आधार हो।

यदि यह दावा सही है, तो हमें अपेक्षा करनी चाहिए कि सिर्फ चिंपैंज़ी ही नहीं बल्कि कुत्ते, बिल्ली और चूहों जैसे अन्य स्तनधारी भी अपने-अपने अनोखे अंदाज़ में भाषागत रूप से दक्ष होंगे और अमूर्त चिंतन व अभिव्यक्ति के भी काबिल होंगे।

एम.आई.टी. के स्टीवन पिंकर जैसे अन्य भाषाविद जन्मजात भाषागत समझ को शुद्धतः एक जिनेटिक तोहफे के रूप में देखने के आलोचक हैं। पिंकर का मत है कि भाषा जटिल व उपयोगी होने के अलावा अनुकूलनकारी भी है। "यह विडंबना ही है कि लोग वनमानुषों को ऊंचा उठाने के लिए हमारी संप्रेषण प्रणाली उन पर थोपना चाहते हैं, गोया यही उनके जैविक महत्व का पैमाना हो।"

इस तरह के चेतावनी भरे शब्दों के बावजूद जंतु संज्ञान सम्बंधी शोध विचार व अमूर्तीकरण के क्षेत्र में नित नए आश्चर्यजनक तथ्य उजागर कर रहा है। क्या हम पिंकर के 'हमारी संप्रेषण प्रणाली उन पर थोपने' को त्याग कर यह अध्ययन कर सकते हैं कि क्या जंतु समूहीकरण कर सकते हैं और इन्सान की मदद के बगैर चित्रों के बीच भेद कर सकते हैं?

इस मुद्दे पर डॉ. फ्रेडरिक रेंज के नेतृत्व में वियतनाम के एक वैज्ञानिक समूह ने विचार किया है। उनका शोध पत्र *एनिमल कॉग्निशन* पत्रिका के नवंबर 2007 के अंक में प्रकाशित हुआ है। टचस्क्रीन विधि से किए गए प्रयोगों में पता चला कि सारे कुत्ते प्राकृतिक उद्दीपनों के चित्रों को वर्गीकृत कर पाते हैं।

रेंज के शोध पत्र के साथ उसी अंक में प्रकाशित एक अन्य शोध पत्र में डॉ. रोसी और डॉ. एडेस ने बताया है कि कुत्ते इन्सानों से संवाद करते समय सुसंबद्ध ढंग से कुछ संकेत ग्रहण कर सकते हैं और प्रदर्शित कर सकते हैं। (कुत्ते पालने वाले तो कहेंगे कि उन्हें तो यह बात हमेशा से पता थी।)

कुछ वर्ष पहले यू.के. के जीव वैज्ञानिकों ने दर्शाया था कि सामान्य कौए एक तार को हॉकी स्टिक के रूप में मोड़कर उसकी मदद से किसी गहरे बर्तन में से भोजन का टुकड़ा निकाल लेते हैं। इस तरह के औज़ार बनाने के लिए विश्लेषण, विचार निर्माण और अमूर्त सोच की ज़रूरत होती है। यदि कौआ ऐसा कर लेता है तो वह अक्लमंद उर्फ *सेपिएन्ट* है। प्राकृतिक उद्दीपनों के बीच भेद करके कुत्ते भी *सेपिएन्ट* हैं, और संकेत भाषा सीखकर और सिखाकर और कंप्यूटर गेम में कॉलेज के छात्रों को शिकस्त देकर चिंपैंज़ी भी *सेपिएन्ट* साबित होते हैं। तो वक्त आ गया है कि *होमो सैपिएन्स* पदवी को थोड़ा व्यापक तौर पर लागू किया जाए और इसमें अन्य जानवरों को भी शामिल किया जाए।

कम से कम हम वनमानुषों से शुरुआत कर सकते हैं। इन्हें *पैन सेपिएन्स* कहा जा सकता है जैसा कि डॉ. मात्सुज़ावा ने अपनी किताब 'प्राइमेट ओरिजिन्स ऑफ ह्युमैन कॉग्निशन एण्ड बिहेवियर' में लिखा भी है। ***(स्रोत फीचर्स)***